अक्षय प्रकाशन
7/7 दरिया गज, नई दिल्ली-110002

घोषणा पत्र

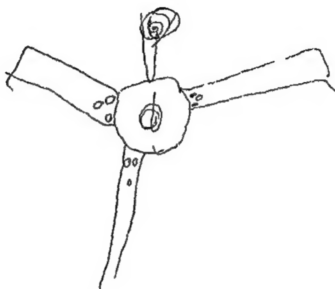
(कविता सग्रह)

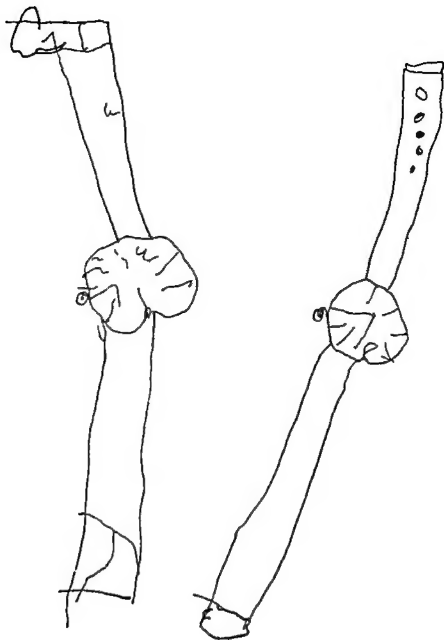
इब्बार रब्बी

मूल्य तीस रुपये

प्रथम संस्करण 1981 ☐ इब्बार रब्बी, दिल्ली 1981 ☐ आवरण और सज्जा प्रमोद गणपत्ये ☐ फोटोग्राफ एस० के० शर्मा ☐ नागरी प्रिंटर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली 32

GHOSHNA PATRA (a collection of poems) by IBBAR RABBI
PUBLISHED BY AKSHAYA PRAKASHAN 7/7 DARYA GUNJ
NEW DELHI 11000_ Price 30 00





अनुक्रम

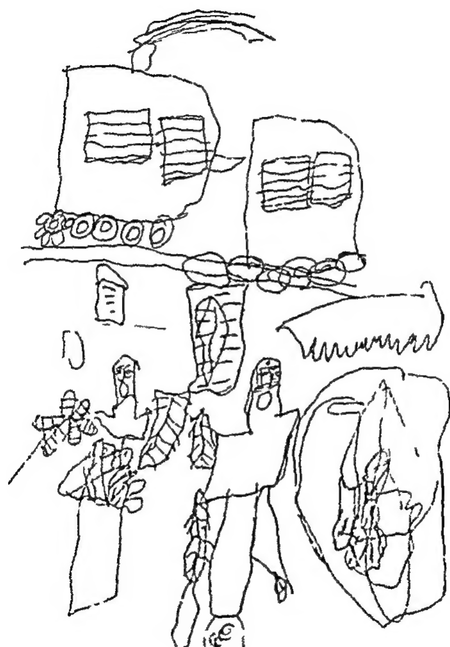
॥4॥ कल जो सुबह हुई

॥5॥ भूख के साथ

॥6॥ खासती हुई नदी

॥7॥ निजी और बहुत निजी

॥8॥ सस्मरण ही बचे हैं



[illegible] 2 3-81 [illegible]

आज जो यह है ॥ 1 ॥

([illegible] 1972 73)

झुग्गी वालों का गीत

(15 अगस्त की रजत जयन्ती पर)

हम पच्चीस साल से दरवाजे पर खड़े हैं
किरायेदार अन्दर पसर पड़े हैं ।।
तुमने तो कहा था—
"आओ इसे निकालें
तुम्हारा घरबार तुम्हें मिलेगा'
हम उससे भिड़े, कई साल तक लड़े
और निकाल कर ही माने,
अब हमारा ही प्रवेश निषेध क्यों ?

क्या फर्क है नये और पुराने में !
हमें तो नहीं सौंपा उसने हमारा घर ।
जब उसका सामान जा रहा था
तुम्हारा आ रहा था ।
हम उसका बिस्तर बांध रहे थे
तुम्हारा ढो रहे थे ।

हम तो नहीं थे, गये दरबारों में सलामी लेते हुए
हम तो नहीं थे कुत्तों की तरह ताम्रपत्र चाटते हुए ।
हम पच्चीस साल से यहीं के यहीं खड़े हैं
अपने ही घरों के, टूटे की ताख खड़े हैं ।।

हम अधिक अन्न उपजा कर टाप रहे है,
तुम उपवास के चमत्कार समझा रहे हो।
हम उत्पादन बढाकर हाफ रहे हैं,
तुम तस्कर निर्यात चमका रहे हो।
हम पेट पर डिग्रियां लाद रहे हैं,
तुम योजना के घोडे हांक रहे हो।
हम मोर्चे पर दम तोड रहे हैं
तुम वीरचक्र उछाल रहे हो।
हम मात भाषा मे सीज रहे है,
तुम अग्रेजी म मुस्करा रहे हो।
हम कर्तव्यो मे डूब रहे हैं,
तुम अधिकारो मे नहा रहे हो।

हम पच्चीस साल से इतजार मे खडे हैं
हलुए की कडाही मे भुनगे से जडे है॥

(1972)

मेरा घर

मां बहन को गालियां उगल रही है,
घर में सुबह हो रही है।
दायें हाथ से दाढ़ खुजाती है
बायां छाती पर रख, दमा दबाती है।
मेरे फटे नेकर में सजा,
भाई सीटी बजा रहा है,
और मंझला अंगीठी तापता है।
कुर्सी का पाया अंगीठी में ठंसा
ठिठुरती है दो गज लम्बे चौड़े आंगन में मां।
तन पर फटा ब्लाउज नहीं है,
बिना साबुन के उसे धोकर
सुखाकर अंगीठी पर
गुनगुनाती हुई मां।
एक घंटे बाद स्कूल जाने के लिए
फिर गुनगुनाती हुई बहन।

केन्द्रित यह मेरा प्रिय भारतवर्ष है।
घुन लगा है मेरे दिमाग में,
घुन लगा है देश के विधाताओं में,
गणतन्त्र मोहल्ले के
रायबहादुर अवध मदन श्रीवास्तव
की हवेली के निर्माण पर बनी झोपड़ी में।
रायबहादुर की कई गांवों में जमीन है

दस दूकानें चार मकान हैं
खाली पड़े है नीचे कमरे,
लेकिन इस कोठरी का किराया है सिफ साठ रुपये
पिता की तनख्वाह है 125 रुपये।

कोने मे टूटा पलग है,
जिस पर पडा लिहाफ
मोली स्याही के दाग,
हर रग के चार पैबद।
चीक्ट तकिया
रीढ टूटे कुत्ते की झूलती पीठ सा।
लिहाफ म मुह लपटे पडी है,
जमीन क रग रूप वाली चादर।
पलग के बराबर मे
लकडी की पटिया पर चटाई,
जिस पर फटा कबल बिछा कर
सोती है बहन।
उसके पट म दद उठता है।

डाक्टर कहता है दिल्ली जाकर दिखाओ,
मा ने घर आकर देखी जन्मपत्री।
दीवार पर राधा कृष्ण का फटा कलडर,
बिना किवाड की आलमारी,
टूटी शीशी म दो बूद तेल,
एक शीशे की किरच,
गटापारचे का कघा,
कुछ कतरनें।

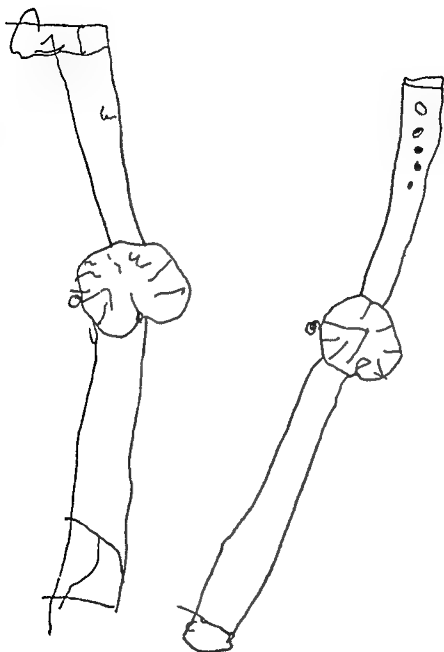
डिग्री का गाउन पहने बेटे की तस्वीर
उसके पीछे चिटठिया का ढेर
चिटठिया पर उगलिया के दाग
चिटठिया पर सीने की गर्मी,

चिटिठया पर थूक के निशान,
चिटिठयों पर चूमने के बाद,
बार बार पढन स मिटे हुए अक्षर
पढकर रोन स घुले हुए अक्षर,
'पहले मैं पढ़ूंगा"
"पहले मैं पढ़ूंगी"
की खींचतान म फटे हुए अक्षर।

ऊपर रखी फटी तबले की सूखी जोड़ी।
कील पर टंगी पिता की एक मात्र पतलून,
फटी बनियान और
बिना कालर की चीकट कमीज।
जमीन पर निखर दो गिलास और चम्मच,
मट्रिक साइंस की किताब,
और पुराने अखबार क पन्न।

ये क्या कम ह इस कोठ म।
यही है मरा मा का,
मर पिता की गुस्सा।
यही है, यहा है मरा घर,
यहा, बिल्कुल यहा, रहता हूं मैं।
मैं खुश नहीं होता तो चिटिठयां रखती है यहां
गुस्स म और प्यार म,
लड़ाई म और मस्त म,
मरा ही जिक्र होता है यहाँ।

(21-10-72)



रेखांकन अमित मदन अगस्त 1975

मेज पर घडी ।।2।।

([illegible] 1975)

मेज का गीत

इसे मैंने भोगल से खरीदा था,
पचास रुपये म दस साल पहले,
यह एक मेज है।
लेटिए मत यह चारपाई नही है।
इसके चार पैर हैं
एक अदद सीना है
तना हुआ पेट पीठ सब एक
यह बढ़ई का पसीना है।

नही यह एक मेज नही है।
पेड़ की नमी है,
मौसम का जीवाश्म,
काठ का सस्मरण है।
नही यह लकड़ी नही है,
यह पृथ्वी है, जिस फाड़कर काठ निकला था,
हवा म आठ आठ हाथ उछला था।
हां यह मिट्टी है, गोबर है, पत्थर है।
पर यह अभी जो है सामने वो है
सिर्फ एक चौपाया,
जिसे अपने मजे के लिए नही
तुम्हारी सुविधा के लिए मेज कह रहा हू।
सो यह तय पाया कि यह जो सामने है,
यह वही है जो न पहले है, न बाद म।

यह लकडी है मान लिया,
पृथ्वी भी है मान लिया,
लेकिन फिलहाल सिर्फ मेज है,
कुहनियो से दबी टागो को झुलाती हुई।
कुर्सी से सपर्क के लिए आतुर
आदमी को पुल बनाती हुई।
क्या बात है !
बिना कुर्सी के यह कुछ नही है।
यह इसे ढूढती हुई आती है,
यह बुलाने नही जाती है।
जिसने आदमी को रगडा है,
यह इसी का बछडा है।

मै एक फुनगी पर बैठकर
दूसरी फुनगी पर लिख रहा हूँ।
मैं एक ठूठ की छत पर टिका,
दूसरे ठूठ की छत से बात कर रहा हू।
मैं दो भूतपूर्व पेडो के बीच,
एरियल सा लटक रहा हू।
मैं कितना भला दिख रहा हू।

इस बदरगाह पर घरलू
अखबार उगे और रवाना हुए
इस मेज की खाडी से दोस्तो को गाली,
प्रेमिका को आसू भेजे।
यहा अखबार बिछा रहा,
पानी इतिहास पर दर्शन जमा रहा।
इस मेज पर किलकती थी नन्ही घटाए,
मचलती थी नाबालिग हवाए।
इस पर मेहदी का जगल,
अमरूदो का दरिया था।
मेज मज नही, बाल हसी थी,
धार पर टिकी नाव थी।

नही वह रोटी पर टिकी थी
रोटिया आजकल चाद हैं--
जहा सिर्फ अपोलो जाते हैं।

इस मेज पर नदिया लेटी रही
कीटस अगडाई लेता रहा
यह मेज कटरवरी थी
स्ट्रेटफड एवन थी
यही हा यही थी
एक मीटर लबी आधा मीटर चौडी
डेढ मीटर ऊची
जी हा यही थी, मेरी थी।
यहा नौकरी के फाम भरे जा रहे हैं
यात्रा के विवरण
शादी की चिटिठया
सालगिरह की दावत हो रही है।
बिजली चले जाने पर
मोमबत्ती मज्जा मे नहाकर गा रही है,
उसका गीत रोशनी है।
यहा पत्नी की बुनाई रखी है
बच्ची की गुडिया सो रही है
बेटे का बल्ला आराम कर रहा है
मेज पर क्या नही हो रहा है
यह मेरा ब्रह्माड,
घर का विश्वकोष है
यहा रेडियो बज रहा है
यहा भाई भाभी से लड रहा है।
यहा मुन्ना थूक निगल रहा है।
यहा खजुराहो की मूर्ति सजी है—
मेज पर सिगरेट की डिब्बी पडी है।
दूध का हिसाब बिजली का बिल है
घर का वेद राशनकार्ड है
दराज क्या है पूरा सूचनाकेंद्र है।

यह फूला की सेज नही है,
यह हमारी मेज है ,
जिस पर मेजपोश नही है।
यहा दस दिन नगे हो रहे हैं,
दुनिया हिल रही है।
यहा बुद्ध के ऊपर लाल तारा चलझला रहा है।
यहा मुनाफा बिखर रहा है,
मजदूरी सगठित हो रही है।
यहा साहित्य राजनीति बन रहा है,
राजनीति फेफडो मे बदल गयी।
यहा दराज से छापामार निकल रहे हैं
कामचोर बद हो रहे हैं।
यहा मैं मेज हो रहा हू
मज्जा तक मौज मे आ रहा हू।
बछडे को मां बना रहा हू,
दराजो को मुक्त क्षेत्र घोषित कर रहा हू।

(8

घडी का गीत

यह जो भविष्य की तरह पसरी पडी है,
समय की कलाई पर गजरे सी जडी है,
यह एक घडी है।
यह समय को मैल की तरह धोती है।
इस चाल मे तेज रफ्तार है,
पर घोडे की रिश्तेदार नही है।

यह गति का ठहराव,
उडान की थकान है।
समय—फूल,
समय पिघल कर ठोस हो गया है।
मैं समय को उम्र की तरह पी रहा हू,
लोग कह रहे हैं जी रहा हू।

इसकी खाल कडी है,
इस पर बेशर्मी की चर्बी मढी है।
यह किसी की सगी नही है,
इसे किसी से प्यार नहीं है,

यह अडिग अविचल स्थितप्रज्ञ योगी सी
परिवेश से कटी
समय पर टिकी है
यह नदी की तरह मुडती है
इतिहास की तरह सडती नही है,
यह समय मे बहती है

रूढ़ि की तरह गडती नही है
सब को वक्त बताने के साथ
खुद वक्त की पाबद है
अनुशासन मे पक्की
नियम की खरी है।

इसके रुकने से समय नही रुका।
यह चले या रुके
मैं जहा था, वहा नही रह सका।
यह मेरे शरीर म रुकी रही
और मैं खडे खडे आगे बढ गया।
मुझे पता नही चला,
और मैं इतिहास बन गया।
मैं इसे घूरता रहा,
और समय हिरन हो गया।
कई बार मैंने अपने को वक्त स आगे दौडते पाया।
कई बार मैं चाबी भर रहा था कि,
उन्होने सवश्रेष्ठ धावक का हार
मुझे पहना दिया।
वक्त की साजिश ने मुझे
वक्त के पार पहुचा दिया।

यह समय बुनती है,
मिनट और सकिड उगलती है।
लार मे वष लिथड रहे हैं,
दशक के दशक डायल मे
सिकुड रहे हैं।

समय की चाल तेज है
वह भूतपूव बच्चो को बूढा,
बच्चो को भावी बूढा बना रहा है।
होशियार,
यहां समय, समय मे आग लगा रहा है।
समय गुलाम की तरह,

मुझे हर मोड पर सुबह शाम
जुतिया रहा है।

सारी उम्र भलाई पर रहने के बाद,
मेरी नही हुई।
मैं जीवन भर खड़ा रहा,
यह चलती रही।
यह पहेली मुझे
घुन की तरह खोखला करती रही।

घड़ी से सीखो
चुपचाप रह कर दौड़ते रहना,
बिना शोर किये सक्रिय रहना
घड़ी छापामारों की पूर्वज है।

बच्चा घडी बनाता है

पाच साल पहले यहा घडी नही थी,
मैं तब आदमी था आज खच्चर हू ।
पाच साल पहले यहा राशनकाड नही था,
मैं तब हवा था, आज लटटू हू ।
मैं तब मैं था, आज कोडा हू
जो अपने पर बरस रहा है ।

मैंने चाद को देखा
वह बाल्टी भर दूध हो गया ।
सिफ पाच वष मे,
शराब की बोतल
मिटटी के तेल की बोतल मे बदल गयी ।

घडी मेरे बच्चे के पाच साला जीवन म
आतक की तरह खडी है ।
यह मेरी नही मेरे बच्चे की कृति है,
इसलिए मुझसे बडी है ।
यह मेरी कृति नही है ।
मैं समय से या तो पहले हू या बाद म,
मैं समय मे नही हू,
अपने समय मे तो बिलकुल नही हू ।
मैं किसी भी तरह सही नही हू ।

यह जो घडी गढी गयी है,
यह मेरे बच्चे की कारीगरी है।
यह जन्म से ही समय को जानता है,
इसलिए बाप को बेवकूफ मानता है।
उसके लिए मैं सिर्फ घोडा हू,
मेरे कान उसके हाथो की लगाम हैं।
आप धोखा मत खाइये
ये कान कहा हैं।
बच्चे के हाथ मे समय की लगाम है।
मैं सही कह रहा हू
मेरा वक्त या तो बीत गया
या बीता नहीं,
पर यह बच्चा समय पर सवार है
देखिए तो घडी से इसको दिली प्यार है।

इसकी जाल और रेखाहीन
नरम हथेलियो मे
समय खार की तरह जडा है।
समय मेरे बच्चे की मुट्ठी मे
महदी सा रचा है,
यह झुनझुने की तरह उसे बजाता है
जो मुझ से नही हो सका,
मेरा बच्चा कर दिखाता है।
मैं पीछे जा रहा हू,
बच्चा आगे बढ रहा है।
मैं अपनी उम्र मे पिछड रहा हू।
अपने बच्चे के कारण,
मैं कायदे से गुजर रहा हू।
अपनी जिदगी बचा कर रख रहा हू,
अपना काम पूरा नही कर रहा हू,
सच कहू तो,
किसी तरह अपना समय पूरा कर रहा हू,
मैं एक एक दिन घडी की तरह गिन रहा हूँ।

मैं बहुत कष्ट मे था,
इसलिए आसानी से भ्रष्ट हो गया।
मैं महत्वाकांक्षी था
इसलिए एक झोंके म पस्त हो गया।

मैं इस पर नमक की तरह जान छिडकता हू,
मैं बच्चे को प्यार करता हू।
यह बच्चा आदमी की कली है,
जो मेरे कधे पर खिली है।
फूल खुशबू के सिवा कहा बोलते हैं,
वे शब्द नही देते गध के रग घोलते है।
समय सुनता नही,
यह कुछ कहता नही है,
बच्चे के लिए ध्वनि रगहीन है,
जो कुछ है दृश्य है।
विचार को यह हाथ से पकडता है
यह सवाद को देखता है
यह बच्चा दृश्य सुनता है
दृश्य का इसकी आख से नही
हाथ से नाता है।
यह उसे मुस्कराकर समझाता है।
इसका चेहरा जीभ से चौडा है।
इसने अभिव्यक्ति को
फीच कर निचोडा है।
शब्द को तोड कर मरता हुआ छोडा है।
यह चीजो को नाम से नही
काम से जानता है।
यह सभ्यता से पहले का
आदिम समुदाय है।
प्रतीक और सकेत इसके डाक तार है।
यहां ध्रुपद, धमार और ख्याल
अधेरा टटोल रहे हैं।
रवि शकर और कुमार गधर्व
मात्र हिलते हुए हाथ और होठ हैं।

घर मे जमे तनाव को वह सूघ लेता है।
वह कारण नही जानता
लेकिन गहराई मे डूबता है।
वह पिता की आख देख कर हसता है,
मां की भौंह देख कर रोता है।
भाषा की यहा जरूरत नही है
घर म शाति की किल्लत नही है।
यहा अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच
मुनाफाखोरी नही है।
इसकी दुनिया मे दलालो का भविष्य
सुरक्षित नही है।
घडी का निर्माता मेरी अवधि की तरह
गूगा है बहरा है
लेकिन उसने वक्त को कस कर पकडा है।

तीस वर्ष का बच्चा
अब घुलता नही रहेगा
समय बोलेगा, घडी बोलेगी
सभ्यता के भेद खोलेगी
यह समय को वक्त बतायगी
इसे अपनाइये
आपके बहुत काम आयेगी

देखो दत्तो—
उसके होठ धडक रहे हैं
आंखें मुस्करा रही हैं
वह ध्वनि से सूरज रच रहा है
वह लहरों की तरह
उन्मुक्त बह रहा है।
उसका हृदय होठ हो गया
वह इद्रधनुष उगल रहा है।
यह हरसाना नही है,

यहा टूट फूट नही है।
सिटकनी हटा कर
भाषा की खिड़की खोल रहा है।
वह हवा पर चल रहा है।
वह काली दीवार तोड रहा है
वह [illegible] की तरह
यहा से वहा दौड रहा है।
पाच वर्ष का यह बच्चा
तीस बरसों की
तीस जुबानें बोल रहा है।

दशक

(अखबार की नौकरी में दस वर्ष)

मैंने आक्सफोर्ड डिक्शनरी को
बीच से खोला और उसमें
बैठ कर ऊँघता बीड़ी पीता रहा,
कि ऊपर के पृष्ठ उलट गये।
अचानक दस साल बाद आज,
धूल झाड़ कर घड़ी ने पृष्ठ पलटे तो
'जे' वर्णमाला के बीच 'मैं' नहीं था,
मेरी त्वचा, सफेद खून
पंख, बालदार सूँड़ और छह पाँव
सिर्फ कहानी थे
वहाँ मैं नहीं, एक दाग था।
मैं अपनी नस्ल का संस्मरण मात्र रह गया,
सो मुझ [illegible] पेज तक बिगड़ गया।
घड़ी ने मुझसे कहा—
"दस साल पहले तू यहाँ 'चार मीनार' पी रहा था
आज धुआँ उठ रहा है।"

मैं दस अगस्त 65 से दस अगस्त 75 तक
दस फुट के कमरे में दस करोड़ मील तक,
काँटेदार तार पर टहलता रहा,
चलता रहा, दौड़ दौड़ कर थकता गिरता रहा।
थकान का चरमोत्कर्ष छलाँग था।
मैं चूर चूर होकर केन्द्र पर उछला
स्फटिक से टकराया।

मैंने चाहा कि उछल कर,
कपाल की चोट से छत तोड दू।
यदि नही टूटी वह तो मैं टूट जाऊगा।
मुझे मेरा अस्तित्व धोखा दे गया।
इरादा बुलद था,
इसलिए कद ओछा रह गया।
मैं एकला सेवसन अतरिक्ष मे,
सपर्कहीन उपग्रह सा भिनभिनाता रहा,
कागज पर टूटी निब सा पिनपिनाता रहा।

लेकिन कमरे मे धूप नही आयी,
हवा नही आयी, धूल नही आयी,
बौछार नही आयी,
दरवाजा नही खुला।
बाहर से कुडी बद थी,
अदर से मैं क्या करता!
सपने की खिडकी दिन की तरह ठस्प हो गयी।
मुझ से मेरा अनुवाद नही हो सका,
दुनिया का क्या होता।
मुक्ति के सपने बुनता रहा,
वादो के विवाद मे बरबाद तो हुआ,
सार्थक शब्दार्थ नही हो सका।

मैं शब्द की चिन्ता मे निःशब्द कफ सा घुलता रहा।
मैंने स्वर को बुलाया, वह बला टाल रहा था,
व्यजन को हाका वह छुट्टा भाग रहा था
सामने आ आकर अक्षर आख मार रहा था,
मैं वाक्य पर सवारी क्या करता,
वह नमकहराम दुलत्ती मार रहा था।
कभी मटर सा घटता रहा
कभी शैली की शैली वचता रहा।
पूरा तो कभी नही पडा।
मैं बार बार कपोज हुआ,
पर पूरा का पूरा पेज पाई हो गया।

मैं रात भर जागता रहा
अनुवाद की पोखर मे
नाक तक डूबता रहा
कविता के इंजेक्शन लगा कर
भाषण की मिर्गी
वक्तव्यों के दौरे झेलता रहा,
लेकिन सुबह 35 पैसे मे मुड़ातुड़ा
उछल कर जब लोगों के तकियों पर गिरा
तो आंख मलती आंखों ने पेज पलटे
हैड लाइन की चुस्की ली
और कोने म पटक कर करवट ली
'आज कोई खबर नही है'
दस साल तक इस खबर से
खुद को खबरदार करता रहा।

बस अब बहुत हुआ।
हमारी चोट के फुत्कार से
दीवार का चूना झड़ रहा है,
पंखे का खंभा बिजली सा तड़क रहा है,
छत का गडर हिल रहा है,
बस अब बहुत हुआ।
यह कमरा अब गिरा तब गिरा,
मानो हमने इसे अभी अभी गिराया।
यह लो मैं बाहर आया।
बंद कुंडी वाला दरवाजा
भूखी ठोकरों ने बहा दिया
खिड़की का कलेजा दरका दिया।

दस साल तक रोग भोग
रहने के बाद
आज करेक्शन लगा रहा हूं
प्रूफ उठा रहा हूं

मेज बना रहा हू
स्याही छुटा रहा हू
यहा मन भर धूप है
सास भर हवा है
कमर तक वर्षा है
टखने टखने धूल है
यहा मै जीवित हू
मै दीवारें ढहा रहा हू
छत को आकाश बना रहा हू
फश पर हल चला रहा हू

(10 8 75)

रगरेज

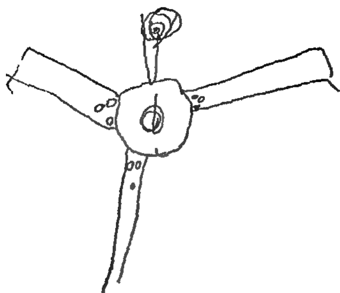
मेज स सीना सटा
लता कुछ लिख रही है।
सुनहरी बाह कागज पर
मन बुन रही है।
मेज की नसो मे
बिजली तड़क रही है,
धमनियो म खून का सैलाब
उत्साह का आवेग ठाठे मारता है।

रोम रोम कान कुरेद रहा है
पाये पख हो रहे हैं
काठ हवा हो रहा है
उसका अन्तरिक्ष तार-तार हो रहा है।

भीगी चिगारियां फूट रही हैं।
पानी म अकुर,
हवा म कुमकुम,
दीवाली के अनार छूट रहे हैं।

मेज म गुलाब उगे हैं,
काठ रुई रुई हो रहा है,
छुईमुई परेशान हो रहा है।
लता मेज की धड़कनें
तेज बना रही है।
काठ का रग रग बदल रहा है,
मेज हरी हो रही है,
लड़की रगरेज हो रही है,

(1975)



रेखांकन अमित वर्द्धन अगस्त 1975

असफलता के हाथ ॥3॥

(मालवीय नगर 1976)

छिपकली

फिर छिप गयी
यह छिपकली है।
दीवार पर चढ़ी,
धूप को भुनगा समझती।
छिप कर वार करती
इसका मन मैला है
पेट
लाशों का थैला है।

(1976)

सेव का गीत

लडकी सेव खा रही है।
सुर्ख सेव
भरी जवानी मे
अंतिम यात्रा से गुजर रहा है।

गुलाबी मैदान पर
सफेद किले मे घिरा,
सेव अभिमन्यु की
लडाई दोहरा रहा है।
उसे शताब्दियो से खाया जा रहा है,
पर वही है जो खत्म होने मे नही आ रहा है।
कुछ सफेदपोश सफेदी के
दुश्मन हो गये।
सेव का समय कैसे दात
पर दात लगता बीत रहा है
सफेद हाथी के पावो से कुचल कर
वह लहूलुहान हो रहा है।

उसका पुनर्जन्म मे विश्वास नही है।
जब वह 'नहीं' हो रहा है,
तब सिर उठा कर खडा हो रहा है।
सेव शहीदो की पात मे उभर रहा है,

सेब आदमी के कद से बडा हो रहा है।
यह बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा,
उसका नरम गोश्त रग लायेगा।
सेब अग अग मे फडकेगा,
दिल बन के धडकेगा,
खून की तरह मचलेगा।
गुलाबी रग गालो पर,
काला रग केशो मे,
सदुर मह्व एडियो मे,
लडकियो मे मुस्करायेगा सेब।
रोज हमारे तुम्हारे काम आयेगा सेब।

(28-8-76)

झरना

वह पहाड से छलांग लगा रहा है
उत्साह घाटी से मिलने को दौड़ा
सफेद रंग दहाड रहा है।

अमरूद

अमरूद अमरूद से कुछ कह रहा है।
एक पिजर पिलर हो रहा है,
दूसरा जमरूद हो रहा है।
एक समपण की खाई मे नेस्तनाबूद हो रहा है,
दूसरा फूल कर ताबूत हो रहा है।
उसका सिर कलगी की तरह तनता है,
कोई जब पहली बार प्रणय
निवेदन करता है।
वह गुलगुले अमरूद की तरह
गरम गरम लगता है
गरम गरम महकता है,
पाप इलाहाबाद हो रहा है।

खबरदारी का गीत

पूंजी के लिए पुल नही हो सका,
मैं सफल पत्रकार नही हो सका।
विचारों में पत्ते सा डगमगाता रहा,
जड नही था, इसलिए जड नही जमा सका।
पीछे ही पड़ा रहा, उछल कर सामने नही आ सका,
जिस पर चलकर 'य' और 'वे' मिलते
ऐसा मधुर एकांत नही हो सका।

खबरो के बीच बेखबर रहा
समय पर खबरदार नही हो सका।
भ्रष्ट होने की
स्वर्णिम सम्भावनाए थी,
पर इतना कमजोर था कि
नष्ट नही हो सका
मैं कितना अभागा हू
कि भ्रष्ट नही हो सका।

सस्करण छूटने के बाद
कबाडी ने कहा—
"ये रद्दी दो रुपये किलो बिकेगी
इससे अधिक नही चलेगी।'
विमान दुर्घटनाओ विश्व सम्मेलनो
सात अरब की क्षति
बिहार में बाढ, रुपये का अवमूल्यन
तुर्की मे भूकम्प, सात लाख हताहत

सम्पूर्ण क्रांति, दूसरी आजादी, अन्त्योदय
और स्वर्णिम संकल्प को
उसने तराजू में तोला
ठूसठास कर बोरी में भरा
साइकिल पर लटकाया
कुछ सिक्के फेंके
और चला गया।

ये सब सही है,
पर यही सब कुछ नहीं है।

मेरा अन्त लिफाफे में होगा,
जिस में सब्जी भरी जायेगी,
या रेवड़ियां,
या दवा की गोलियां,
या प्रेमिका के लिए वेणी,
या बच्चों के लिए फल।
बाद में खाली लिफाफा
उड़ता रहेगा।
नाली के किनारे,
मलबे के ढेर पर,
खेत या खलिहान में।

अधबनी इमारत का
कोई मजदूर खरीद कर लायेगा,
एक किलो आटा,
ढाई सौ ग्राम गुड़
या प्याज।
चौरंट खापी म दवा
बहुत बहुत काम आऊँगा मैं।

रामकलिया
पनफती लपेटेगी,
लल्लू कधे पर मचलेगा,
भूख का आकार,
पसीने का व्यवहार,
समझाऊँगा मैं।

दूधिया आखो मे मुस्कराऊँगा
आग और बीडी के बीच सवाद की तरह
गुनगुनाऊँगा।
सडक की तरह हाथ से होठ तक
दौड जाऊँगा।
कागज में लपट,
कही हथेली के चेहरे पर चमक,
बन कर आऊँगा मैं।
मेरा अन्त नही होगा,
मेरा समय नही बीतेगा।

(197

घर

यहां साड़ी मांगती,
फीस मांगती बहन है।
घड़ी मांगता,
रोजगार ढूंढता भाई है।
यहां तनख्वाह पूछती
पत्नी है।
प्यार चाहते बच्चे।
यहां कुछ भी नहीं मांगती मां है।
और कुछ न कहता
सिर्फ दबता हुआ पिता है।

(गोंडा 1976)

दिल्ली की बसो मे

सौर से निकलते ही,
पायदान पर खडा हो गया,
दिल्ली की इन बसो म,
मैं बूढा हो गया।
जो मुल्क को खचडे की तरह
दौडा रहे है,
उनके पाव का कूडा हो गया।
मैं अधूरा ही था,
कि जीवन पूरा हो गया।

जिनका सीट पर कब्जा है
उन्हे खडे का डर है।
खडे की बैठे वाले पर नजर है।
मुझे मेरा बहुवचन कुचलता रहा।
मैं भीड स पिचकता रहा
मैं खडा खडा स्टापो स गुजरता रहा।

बस म टगे टगे
दीवार पर हिरन का सिर हो गया।
मैं एसा हिलगा कि,
तार पर लटकी पतग रह गया।

एक टर्मिनल स दूसर टर्मिनल तक घूमता रहा।
मैं शहर स मुक्त नही हो सका,
मैं समय पर व्यक्त नही हो सका।

पतीस वर्ष तक चलने के बाद
खेतो म नही गया।
नही गया नदी की तलहटी मे,
मैं पहाड तक नही गया,
नही गया हडताल मे,
समुद्र तक नही गया,
नही गया चादनी मे,
गाव और बस्तियो के वीरान म।

मैंने नही देखा एक पायदान,
चढने के लिए खुद बस बनना पडता है।
मैंने नही देखा आख की तरह
बस से गिरने के बाद,
आदमी क्या करता है।
मैंने टिकट ले लिया,
और आँख बन्द कर ली।

जब मैंने इस बस म कदम रखा,
मुझे लडको का व्यवहार पसद नही था।
मैं टिकट लेन का अभ्यस्त नही था।
मेरी आख सपना थी,
मेरे पाव भविष्य थे,
मैं सुनहरा था,
मै धूप था।

आज कचोट सा बिछा हू,
चलनी की तरह घायल पडा हू।

यह बस कहा से चली थी,
इस बारे मे लोग बतात हैं।
कहा तक जायेगी यह नही मालूम।
मेरी मृत्यु सडक दुघटना म होगी,
या बिस्तर पर,
यह न सडक को मालूम है,

न विस्तर को।
दोनो इतजार करें।

बस मे जीवन है
चिताए हैं, वेतन है, कालेज है,
बच्चे हैं, भविष्य है।
बस मे प्रेमी है, पति है,
आदरणीय है,
अनुकरणीय है।
देखिये सम्हालिये स्वय को,
नीचे दुघटना है।
होरन बजाती,
दघटनाए
दौड रही है।
आप ऊपर ही रह,
टिकट जरूर ले लें।
आपको कहा पहुचना है !
कनाट प्लेस
या मुर्दा घर
यह निणय बस को करना है,
प्रजा की बेबसी को नही।

पर,
इसका अथ यह नही है कि
खामोशी के धैय की सीमा नही होती !
इसका अथ यह नही है कि
यात्राए पूरी नही होती।

(14 12 1976)

घोडा

मुझे पटक कर
समय निकल गया सरपट।
अधमरा पडा हू।
ये झुरिया कहा
टापो के सस्मरण हैं।

(1977)

विजली

लो,
पानी रोशनी मे
बदल गया।
पानी म,
पानी के दिये
जल रहे हैं।

(1977)

खेल

यहा भागी जा रही है,
बच्चा की तरह।
उस की चोटिया उड रही हैं।
कुछ खो गया है
क्या ढूढ रही है
खेत-खेत
चीखती हुई रेल।

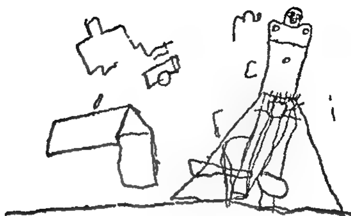
बच्चिया रेल रेल खेल रही हैं।

(15 3-1979)

कोहरे मे

सुबह-सुबह तुमको चूमा।
एवरेस्ट के हिम म
चिली से चीन तक
पख खोल घूमा।
झडती रही बफ
बिखरा सागर माथे पर
रजनीगधा को सघा
सुबह-सुबह
तुमको चूमा।

(15 12 79)



रेखांकन अमित मढन 1976

कल जो सुबह हुई ॥4॥

(कलकत्ता नगर 1964)

लड़के

माने नही !
माने नही !
ताली पीटते तारा के झुण्ड ।।
चिड़िया की तरह चहककर,
टोले मोहल्ले के लड़का ने
लुढ़का ही दिया काले तालाब मे
आग का गोल पत्थर।
'माइसेल्फ इन वंडरलैंड' जैसी बात
पहले तो खौलकर सूखने लगा काला तालाब।
फिर भीग गयी रोशनी की आवाज़ मे।
दूर दूर तक हर सीढ़ी हर दीवार।

प्रेम

बड़े सवेरे साइकिल दौड़ाता आया पोस्टमैन
पूर्वी मेन्शन की दहलीज पर
पता नहीं कब डाल गया,
रोशनी का लाल लिफाफा एक
मुग्धा उषा सेठी ने फाड़ दिया फ्लैप
डूब गये किरणों के अक्षर में—
नदी, नाले, खेत और खलिहान,
गाव शहर और पर्वत, रेगिस्तान।
पढ रहे हैं सभी क्यों
(चद्रमा नरायन का)
उषा सेठी के नाम खत ?
क्या व्यक्तिगत पत्र सार्वजनिक सम्पत्ति है अब ?
क्या सार्वजनीकरण हो गया है प्यार का।

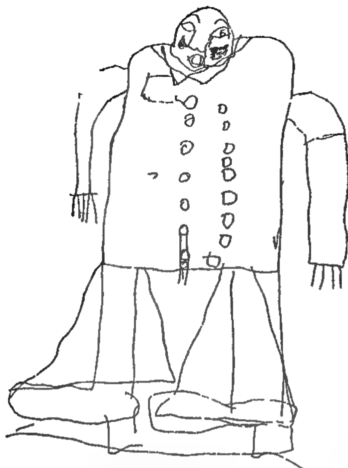
साझ

दिन भर
धूप ने सेया जिसे,
लुढका दिया हवा ने
नीले फर्श पर उसे।
लो फूट गया,
करोड़ों वर्ष पुराना अंडा।
कई कई मन और टन
बिखरी है पीली जर्दी।
सुनो,
उठा लो इसे।
आलमूनियम की बादल प्लेट में
सजा दो इसे
चाय और आमलेट
रहेगा मजा।

प्रकृति

बचपन मे मा ने दिखलाया था कटोरे मैं चान्द।
तब से नहीं देखा आज तक।
स्कूल मे दिखाई देते थे तारे,
गलत सवाल करने पर बेंत बजाता था जब।
जिन्दगी अब गलत हो या सही,
पर गायब हैं तारे।

पहले फूदते थे आसमान मे गमलो मे पेड,
पर अब नही आये बरसा से शहर मे,
वानप्रस्थी हो गये हैं सब
(यदि वन है कही तो)
झरने और पहाड,
बड सबध-पत्र की जेबो मे देखे थे,
अपनी तो कल कट गयी,
पर्स भी नही बचा,
कैसे झरने कैसे पहाड।



रेखांकन अमित वर्द्धन 30-9-76

भूख के साथ ।। 5।।

(सरोजिनी नगर लाजपतनगर, 1965 66)

बहन

क्या हो गया है मुझे ?
बड़ी बहन हो गयी क्या इतनी बड़ी ?
नाम से उसके ब्याह भागते हैं दूर।
चुराकर छोटे भाई के प्रेमपत्र
सबके सामने पढ़ पढ़कर हँसती है,
पढ़कर अकेले में गुमसुम हो रहती है।

छोटी बहन सुधा को पढ़ाने,
नौ बजते ही आता है ट्यूटर।
कितना शरीफ, कितना मेहनती है।
दफ्तर से अक्सर लेता है छुट्टी
और पढ़ाता है सारे-सारे दिन।
जाते हैं मैं, बाप, दफ्तर,
माँ बाजार को,
भाई स्कूल, और बड़ी सेंटर।
पर पढ़ाता है अकेला मेहनती ट्यूटर।
ट्यूटर की कमीज में बटन टाँकती है सुधा,
फैशन पर बहसती है ट्यूटर से सुधा,
जब चाय के लिए, तब खाने के लिए,
और अब हाथ से किताब छीनने के लिए,
जिद्द करती है, उलझी रहती है ट्यूटर से सुधा।

कापियो मे छिपाकर नावल पढ रही है सुधा ।
सिफ पडा देखता हू और सिगरेट फूकता हू ।
मा गाधारी बैठी है सामने ।
बडी की एक आख हाथ के ताश मे,
दूसरी जडी है पहले ट्यूटर, फिर सुधा मे ।
मेज के नीचे दो पाव टकराये ।
मा बाप और मै कोई नही देखता यह,
क्योकि ठेका लिया है सिफ बडी बहन ने ।

बाद म क्या गालिया उगलता है बाप?
क्यो अफसोसती है मा —
' दो महीने से पैसे नही दिये उन्ह ।"
बडी सदेह की नदी है ।
क्या रोती है सिफ सुधा ?
क्या कुछ नही होता मुझे??
उबलता नही क्या खौलता नही क्या ??
क्या हो गया है मुझे ??

नीली हवा मे

खिलखिलाती झील के आइने म,
पत्तिया की हरी आखें।
उफ् हवा की आड लेकर
लता तक बढ गयी हैं, चीड की गम बांह।
ट्राम, बस, दफ्तर धुए से दूर,
जलपछी के डैनो की तरह कापते हैं गाछ।
चुलबुली चिडिया के गीत सोये हैं
सरुइसर की नीली हवा मे।
आओ, डूबें और खोजें उनकी लतरें
दोहरायें फिर हमारे साथ जिनको
यह खुला आकाश यह हरी चट्टान।

गुलाबी मछलिया

हा, मुझे चाहिए जोडी भर सुनहरे नारियेल ।
जिनमे नहाओ तो,
बहने लगें लाल हवाओ की गलिया म
मूछो और बालो म बधे हुए,
सल्वादार डाली और सल्वादार डालिया ।
हा, मुझे चाहिए
कुकुरमुत्तो की चर्बी से मढी गुलाबी मछलियाँ,
जिनसे बाहर फूटने को फडफडाते हैं
डिम्बाकार एलन गिन्सबग
और मलयराय चौधरी ।
इस आठ तारीख को टपकेगा,
एलेन गिन्सबग दायी डिम्बग्रथि से,
और पन्द्रह दिन बाद,
बायी स मलयराय चौधरी ।

हा, मुझे चाहिए बर्फ वाले होठो की गर्मिया ।
गुलाबी नरम खाइया ।
विस्मय से खुले रह गये,
हा, मुझे चाहिए एक जोडी मरे हुए सफेद होठ ।
कील से जडे,
सीप से बेजान ।

जिनके सोफे पर सिर स पाव तक का ग्लोब
पटककर फोड दू।
चेतन-अवचेतन और अर्द्ध चेतन के सारे ससार लेकर सो सकू।
होठ जिन पर चढ सकू उतर सकू,
जिनकी दरारो मे रध्रो म भिद सकू।
होठ
(धूप मे रखी कुनकुनाती बासी बीयर)
जिन्ह पीकर 'एडवड जेम्स' के घर की 'माय वेस्ट पर पसरू सिकुड रहू।

मेरी दिल्ली

किसी भी शर्त पर नहीं छोड़ना है,
अपनी इस व्यक्तिगत दिल्ली को,
जहा हर शाम समर्पित होता है
इस बस से उस बस मे मुझे।
मेरा सारा अपना दिन दे दो मुझे।
जनवरी की शामे और फरवरी का दोपहर,
और 'दि० प०' की बसें बस।
कुछ नही चाहिए मुझे और
जीने के लिए और मरने के लिए।
क्योंकि चढने वाला रास्ता जुटा देता है सारा सामान,
सारे प्रतीक, सारा सुर्रियलिज्म।
मैं वापस कर दूगा 'डाली' की आत्मकथा की सारी प्रतिया।
प्रतीको की नदियो मे छोड दो मुझे।
छोड दो मुझे मेरी व्यक्तिगत दिल्ली मे,
अपनी बसो म।
नही चाहिए स्विटजरलड, श्रीनगर और दीवाने खास।
बसो की बनियान रहित छातिया,
होठो की बेल,
बाहो के शाख
और पगथलिया से फूटती मधुर महक दे दो
दे दो मुझे।

आओ, बाहर

(बाल सखा बद्रीनाथ वर्मा मोहन के लिए)

बद कमरे, ठीक है।
टेबुल लप को रोशनदान के रास्ते ऊपर कोट की तरफ फेंक दो।
किवाडा मे झिर्री क्या है ?
अपने रोमकूपो के अनहद नाद से इन्ह मढ दो।
ठहरो !
मैं ये किवाड उतरवाकर दीवार चुनवा देता हू।
आदमी क्यो जाता है भीतर !
आदमी क्यो आता है बाहर !
क्या खोलता है दरवाजे !
क्या खिडकियाँ !
क्यो रोशनदान !
क्या सूरज !
क्यो टेबुल लैम्प !
क्या फिलिप्स !
क्यो बजाज !

तुम्ह अब कोई तकलीफ नही होगी।
दुनिया के पाँच मुल्को के एटम बम जोह रहे हैं बाट,
सूरज का मुह काला कर देने को।
नीले अधेर की बिल्लिया चमचमाती हैं आखें
मदिर के नीचे और पीपल के ऊपर
तुम्हारे सिरहाने जलता मत्स्याकार टेबुल लप फोड देने के लिए।
मैंने सात हजार साल तक
अधेरी गुफा के आवेग को पाला है दिल मे, दिमाग मे।

जो तुम्हारे हर दरवाजे पर कीलित कर देगा
एक ईसा मसीह, दो आलबेयर कामू
और कुछ अदद मादा वेश्याए।

डरो नही, दोस्त! तुम्हे कुछ नही होगा।
सब मुझे ही लादना होगा।
ईसा मसीह के बासी थूक को,
आलबेयर कामू के प्लेग जजर दिनमान को,
और काली कुरूप थुलथुल नीली नसो की नदी को।
तुम्हे सिर्फ कैद रहना है, मेरे अवचेतन के गमकुण्डो मे।
तुम्हे सिर्फ दिवास्वप्न देखने हैं
मेरे मरे हुए नीले घोडे की अयाल पर लेट कर।

तुम जिम्मेदार हो
मेरी लडखडाती आवाज़ के पुल के नीचे खडी
रोने वाली लडकी के लिए।
तुम जिम्मेदार हो
मेरे कमरे की टाइमपीस के सही गलत वक्त के लिए।
खाट के नीचे झूलती,
मकडियो की ताजा सस्कृति के लिए।
और मैं भूल गया हू कि
क्या करना है खाली वक्त मे अपने लिए?
तुम हो मेरे लिए
लेकिन मैं हू अपने ही लिए।



रेखांकन अमित वर्द्धन 30-9-76

खासती हुई नदी ॥ 6॥

खासती हुई नदी

यहा नीले गुम्बद मे आत्मनिर्वासित है भग्न शिखर।
पीली खिड़कियो की इमारत मे उम्र कैद भोगती है गूगी नदी।
उस रात जब नदी खास रही थी।
गुलमोहर की डाल,
मेहदी का झाड और आवने की हर पत्ती काप रही थी।
उस रात जब नदी खास रही थी।

शहर भर मे पीटा गया ढोल।
है कोई जो बताये आत्मनिर्वासित नीले गुम्बदो को
गूगी खिड़कियो तक जाने का रास्ता।
सुनते थे कभी यहा सुरग थी।
अब नही है कोई नामोनिशान।
पहाड से घाटी तक जाने का रास्ता
कोई नही जानता।
बर्फ की तरह गलता रहेगा,
घुलता रहेगा शैल शिखर अपनी अकेली आग मे।

लोगो का कहना है शायद अब कभी,
नदी नही खासेगी अपनी उम्र की पिरिया के पार।
कभी नही, शायद कभी नही।
लोग यही कहते थे।
लोग यही कहते हैं।

कुछ नही कहते

हमारे स्वरो पर है उनका अधिकार,
जो बोलना नहीं जानते।
हमारे इद्रधनुष वहा छितरे रहे,
जहा खिडकिया कभी नही खुली, कभी नही।
सारी शताब्दी हम वहा जीते रहे,
जहा वर्जित था हमारा ही प्रवेश।
हमारी आखें टटोलती रही वहा अपनी रोशनी
जहा नीले अधेरे मुह नही खोलते।

हम नही रहे, अपने तो कभी भी।
जिनके लिए रहे उन्होने नही पहचाना हमारा समपण।
अपरिचित रहे हम परिचिता की भीड मे।
चीखते रहे हम वहा आदिम आवाज मे,
जहा सन्नाटे ने बुने ये जाले, एक पर एक और अनेक।

वद खिडकी

वहा हवा के दरवाजा की कैद मे
रात भर बिछी रहती है, शकर जयकिशन के जादू
और लता मगेशकर के स्वर की चादरो पर
चुटकी भर धूप।
लावे के सूप मे मटकी भर रूप।
अपने आप से छिटकी रहती है,
वह एक नीली कवडी।
जो बोलना नही जानती, किसी भी आवाज मे।
सिफ एक दरवाजे के लिए जिदगी भर,
उस कमरे मे करवट तक नही लेती वह।
एक चुपचाप नदी,
जिसमे कुछ नही डूबता।
कोई नही पीता उसे।
नहाती है रूठी हुई नदी, नदी मे रात भर।
पीती है लहर रात भर लहर को।
डूब डूब जाती है नदी अधे सगीत मे।
ओ टटकी धूप की रूठी नदी,
तू ही बता, जिस लडकी को प्यार करता है वह,
उसकी खिडकी पर तारकोल पोतने का अर्थ!

सिफ मुझे ही मालम है उस पहली का हल,
जहा मुरझाये कुहरे की घाटी मे झूमती है,
हवा के आर्केस्टा के साथ गूगी बहरी बीमार सतर।
काहिरा और गाजा के पिरामिडो मे,
पौने तीन हजार साल से पडी क्लीयोपेट्रा की मिट्टी

क्यो बजाती है अब रात दिन रेडियो।
क्या गूजते हैं पिरामिडो में गर्भ-कुण्ड।
ममियो के चेहरे सिर्फ गीले होकर ही क्या रख पाते हैं
मुस्कान की आवाज
—शायद आप को पता हो,
जहरीले दात वाली मछली
क्यो हर रात चादनी मे नहाती है।
दर्द की महक सी जलती हुई
वह घाटी मे चीखती नदी
इधर से उधर असावरी और प्रभाती में गोखरू मनाती है।

यू डी कोलोन की इच भर पोखर में
मछली की तरह पख फडफडाने को परेशान वह।
दौडता है अपने आप मे हडप्पियन सस्कृति का युग-पुरुष।
कितना अभागा है इन दिनों महादेव
सिर्फ कबीर को हसी आयी थी, सुनी सुनायी बात पर
लेकिन ग्राड ट्रक रोड के मोड पर
कोठी नबर चार सौ पद्रह मे
उसी कोढ को भोग रहा है वह नीला फरिश्ता
आज छह हजार साल बाद।
अब समझ पाया मैं
क्या रोती रही थी, विवाहित विधवा रति
पीढ़ियों की मेड के भी पार।

उसका बाथरूम

नदी नहा रही थी।
सिर्फ मैंने देखा, दरार में झांकते आवारा छोकरों को,
नीले टाइलदार आंगन में,
नंगी निलग नदी को।
चौबीस घंटे में तीन सौ बहत्तर बार,
धड़धड़ाता है रेल का इंजन इधर से उधर।
5567 बसें, ट्रक और 3495 रिक्शे-तांगे पार करते हैं
चौड़े में नहाती हुई नदी को।

मेरे नीचे तैरती है
गाधार देश को बहने वाली नदी।
मैं छा गया हूं उसके ऊपर इस्पात के पुल सा।
एक रोया ही भेद पाया हूं
27 हजार किलोमीटर तक बहने वाली आग का।
क्या तुमने कभी नदी पार की है।
मेरे नीचे हंसती है, सिसकती है
स्याह जद पाले की मारी कटहल की कली,
मेरी अपनी व्यक्तिगत नदी।

उस शाम जूही की बेल ने, पहली बार सिंगार किया था।
अविवाहित विधवा नदी ने, पहली बार जूड़े में फूल लिया था।
सुख-दुख रहित अपने कमरे के कमरे में
वह एक हजार साल बाद पहली बार नाची थी।

शायद मैंने नही देखा यह दृश्य ।
गवाह है उसका अनछुआ जूडा ।
भूरी आगा वाली ताजी नरम बिल्लिया और हरी पोशर ।
नदी क्या नाच रही थी !
सुना है उस दिन शहर भर मे हडताल थी,
उस शाम बाग भर म कोई नही था ।
फूटने लगी थी गध के टुकडो मे, जूही की तरह शाम की परतें
महक गयी थी मेहदी के रग म आवले की छाह ।

दग कर तुम्हे ।
हा, हा, तुम्हे ।
पिरामिड म पडी ममी की तरह लुढक गयी थी
वह सख्त हवा के पलग पर,
'कही कुछ नही, कोई नही' की सफेद चादर ओढ कर ।

बच्चो ने पीटी थी तालिया
पहली बार गूगी आग को गाते देखकर ।
उछले थे बच्चे,
पहली बार बूढी नदी को नहाते देख कर ।
अरी ! ओ सुबह के नाम वाली नदी
अरी ! ओ फूल के जिस्म वाली री,
खिडकी से खास कर बता दे,
कब नहायेगी उस तरह फिर !
आग लगायेगी कब आग मे फिर !

जाड़े की दोपहर

उसने आग की उंगलियों से,
अंगूठी उतारने की कोशिश की।
यह अजूबा देखकर,
पूरी शताब्दी उंगली काटने लगी।
कि उसके स्पर्श से आग परेशान थी।
रोबोट जैसा वह,
लालीपाप की तरह,
आधे चांद जैसे होंठ चूसता रहा।
पूरी शताब्दी समझती रही कि,
वह पान की गिलौरी दबाये है,
और वह चूसता रहा होंठ आग के।
आग परेशान थी।
सुख परेशानी,
जिसे आदमी बनाये रखना चाहता है।
पर नाराज नहीं थी,
क्योंकि वह जाड़े की दोपहर थी।

(8 1 1969)

सडक पर

उसने सडक पर
हवा का पीछा किया।
हवा की सब्ज साडी
हिल नहीं रही था।
हवा के साथ
बच्चा था।
यह बहुत अच्छा था।

दरवाजे

खोलना, बद करना,
सारे सारे दिन,
सारी-सारी रात,
और करने को क्या है
हमारे पास ।
सिर्फ दरवाजे मिले है ।
खोल लिये तो बद,
बद किय तो खुले ।

छह हजार साल बुड्ढा
दप अपना ओज ।
चाद को फोडे हमारा हम ।
आकाश और पाताल भेदी हम ।
खोलते, बद करते रह

कभी खुद को कभी तुम को ।
और कुछ नही तो
द्वार स बिध बिध गय ।
बद और खुलकर रह गये हम ।

जवाब

"तुम्हारा नाम क्या है"
पूछा था उसने प्रियवदा स
बिखर गया गुलाबी ईथर के गालो पर
इस देशातर स उस देशातर तक
एक पीला जवाब—
"वर्जित है यहा प्रवेश ।"



रेखाकन जीवन लाल प्रम 25 6-71

निजी और बहुत निजी।। 7 ।।

(गाजियाबाद, 1968)



सुबह का अनुवाद

आज भी क्यों खडा है! उसकी खिडकी के सामने आवले का पेड!
पेड के तने पर बरसा पुराने रगहीन धागे हैं।
पुत्र-वधू का, उसकी ओलाद का
और उसके पति का भविष्य बाधने के लिए
औरतो ने बाधे है।
सूखी पत्तिया और टहनिया झरता है पेड।
यहा चार मिनट तक बेहोश पडा रहा,
सेमुअल टेलर कालरिज के स्वप्नलोक का आशिक,
छब्बीस रुपये वाला एक्सड इतिहास।
कौन उठायेगा इस बकवास को, नाली के नजदीक से।
उषा शर्मा भी नही, मीना होरा भी नही।
दस के आगे की सीमा भी नही,
और सोलह के आगे का विस्तार भी नही।
ऋण भी नही इस आवेश के लिए और धन भी नही।
पडा है जो बेहोश आवले के झरे दप के नीचे।
पता नही क्यो!

रात के अतिम पहर मे एक कबधहीन रेल,
क्यो घुसती है आवले के सामने वाली खिडकी म,
कटी पिटी अपने अस्तित्व के अस्तित्व से,
घबराकर हटी हुई पटरियो स।
रोज तीस मील तक घिसटती है,
वह टूटी हुई कमर की वजह स।
हर रात हर दिन,
आती है जाती है,

पार करती है नदी, नाले, सडकें और पुल
बिना पटरी में करहडती हुई रेल।

वहा कैद है एक झुलसी हुई दोपहर
जो रात के तीन बजे होती है अपनी पूरी सुर्खी पर।
और जूझती है जिंदगी भर माध्यमो मे, दलालो मे।
मेरा मतलब है भाषाओ म पुलो मे।
हिंदी से अंग्रेजी, अंग्रेजी से हिंदी।
सकेत और सकेत भर मे ही डूब जाती है यह जवान दोपहर।
इस दोपहर को नही जाना है दिल्ली,
न ही शाहदरा,
सिफ यमुना नदी के सडे सूखे गर्भ पर लटकना है उम्र भर।

रात है रेल का बेरग धुआ।
दोपहर है मेज पर सजी उगलिया।
कागज के चाद और सूरज।
शाम है आवले का पेड
जहा बेहोश पडा है,
उषा शर्मा और मीना होरा के बीच डूबने वाला इद्रधनुष,
यानी एक अपाहिज हावडा पुल।
सुबह-अल सुबह सिफ सुबह ही है मेरे लिए।
बाकी तुम ले लो ओ रकीबो
सुबह भर काफी है इसे तो।
विक्टोरिया युग के कमरो मे नीले हैं पीले है
यानी रग ही रग।
जो कभी बदलते नही।
कमरे बन गय सतलज नदी के पाट
तैरती है विविध भारती क कायक्रमो की कमजोर नाव।
अपरिचित हाथ सम्हालते है डाड।
इधर देखिये जनाब नगल है और उधर दगन नहर का लहर से।

वहा कोई नही था

उसने एक क्षण झिझक कर खोल दिया ताला।
मगर वहा कोई नही था,
जिसके लिए लडता रहा था वह,
रास्ते भर अपने ही लाल पर्दे के खिलाफ
बिना जीते कोई भी लडाई।
“एक दिन चदा आयेगा सारी रात जगायेगा ’
फोड दो पटक कर ट्राजिस्टर इकबालसिह।

कौन है, कहा से आयेगा ?
क्या और किसको जगायेगा !
वह जानता है गीत की खुशबू के हर कोने के कोने तक का अर्थ।
लेकिन जानने से मिला क्या,
नही जानता था तभी बेहतर था वह।

लता मगेशकर यह तुम्हारी आवाज है
या पानी मे तैरती चमकती हवा,
यानी स्टेनलेस स्टील की वह छुरी
जिसे उसने पढने की मेज पर रख दिया था,
आयर क्राम्पटन रिकेट की नीली जिल्द पर।
क्या अब वह उस जिल्द पर नही है।
न कोई चाद था न जगाने वाला।
न आने वाला,
न कोई जाने वाला।
लगा वह अभी कही नही पहुचा है।

उसने खोलकर भी कोई ताला नही खोला है
क्याकि वहा कोई नही था।
सलवट रहित चादर से ढके बिस्तर पर
पैस्चुराइज्ड चिडिया पडी थी मरी हुई।
चिडिया लाल और नीली
जो निकलती है हर सुबह शाम
लाल डिब्बा के अंधेरे पेट से।
उड जाने के लिए सारे शहर भर म।
हर खिडकी हर दरवाजे पर बैठ जाने के लिए,
उडती है लाल और नीली चिडिया।

उसने खत को उठाकर तकिये के नीचे दबा दिया।
उसे पता है क्या कहना चाहती है मरी हुई चिडिया।
कौन सा छद दुहराना चाहती है गूगी नतर।
उसने ताला खोलकर आज फिर कोई ताला नही खोला।
क्याकि वहा कोई नही था।
बिस्तर पर प्रतीक्षा कर रही थी
ऋतुमती भीगी हुई नीली लहर की मारी चि डि या ।

अजीर की पत्ती

उसने सुनहरे गुम्बदो की नदी को बाहो म भरना चाहा।
उसने सफेद नागिन के नीले जहर को
चुल्लू मे भर कर पीना चाहा।
अपने आप से अपने को छिपाने के प्रयास मे,
उसने नदी की तरफ देखा,
गुम्बद की तरफ और नीले जहर की तरफ।
कही कुछ नही था।
वह पीले बुद्ध जयती उद्यान म था,
और बुद्ध जयती उद्यान उस म था।
कौन किस म था कहा तक डूबा हुआ सूखा हुआ।
यह फसला विचाराधीन था।

उसने जलते हुए होठो म भर लिया हरी सुरग के मुहाने को।
उसने चूसना शुरू किया जहरीली आग के हरे पानी को।
क्यो फडफडाती है पख अजीर की गम पत्ती।
डबडबाती क्यो है उसके होठो म सिसकती हुई तीसरी आख।
उसकी नसो म बिजलियो की लहर टूट गयी थी।
उसके दिमाग मे दो काले कुत्ते थे
और दिल मे एक सफेद गाय।

उसने देखा उसकी खिडकी पर खडी नदी रो रही है।
उसकी बाहो म बिखरी सिदूरी चादनी भीग रही है।

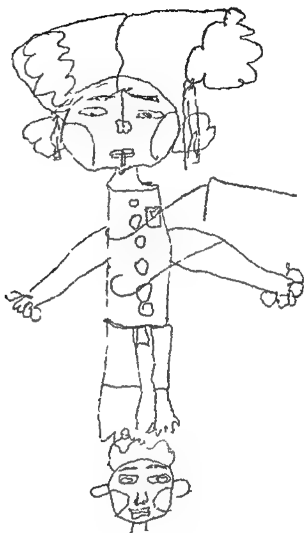
उसकी आँखों में गोरी रात का दर्द जगमगाने लगा।
और वह गाने लगा बिना मुँह हिलाये।
आदिम आवाज़ में बेरौनक गीत।
जिसे सिर्फ नदी ने सुना,
सुरंग ने सुना, रात ने सुना,
और चार पैरों पर खिंचे भूगोल ने सुना।
और वह जान गया कि वह असत्य नहीं है।

सीमेंट

प्लेटफाम पर रखी हैं,
सीमेंट की बोरिया।
इनके बीच घुस कर,
सोऊ रात भर।
दब कर घुट जाऊ।
सीमेंट मे,
पाला पत्ता रह जाऊ।
मैं जिऊ नही,
मुझे न साले
अपनापन।

चुम्बन

मेरे होठो मे
फसी है,
जली हुई बासुरी



रेखांकन अपर्णा, अगस्त 1981

सस्मरण ही वचे है ॥8॥

(शाहदरा 1969)

बच्चे

काले सूट म ताला खोलती,
दिसम्बर की रात ।
विक्स की चार टिकिया,
कहा समा गयी पता नही ।
उस खासी उठी,
सहम गये हाथ ।
क्या नही बढता आगे ।
कब तक खडा रहेगा ।
या फस के इस ओर ।

सुबह,
जब दात साफ कर रहा था ।
पडोसी का बच्चा,
नल से गिलास भर रहा था ।
यह नही आयेगा,
उसके पास ।

वे आते थे,
हर सुबह दौडते हुए ।
आज भी आते हो शायद ।
लेकिन खाली कमरे मे,
पायेंगे क्या ?

उसे फिर खांसी उठ रही है ।
पानी के स्तम्भ की तरह,

गल कर ढहता हुआ,
खडा का खडा
रह गया वह
नल के पास।
पडोसी का बच्चा पानी ले रहा है।
वे नहीं आयेंगे दौडते हुए।

ताला खोलती हुई रात हो,
या दात साफ करती हुई सुबह।
वे नहीं आयेंग
नहीं आयेगा कोई जवाब
उसका लबाई म खामना
और चौडाई मे छीकना
सब बुझ गया कैसे ?

—